R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

मूल्य–4 रुपये, वर्ष–25, अङ्क–3 मार्च 2025

मङ्गलायतन

जो संसार विषै सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागै।

प्रवेश पात्रता शिविर की झलकियाँ

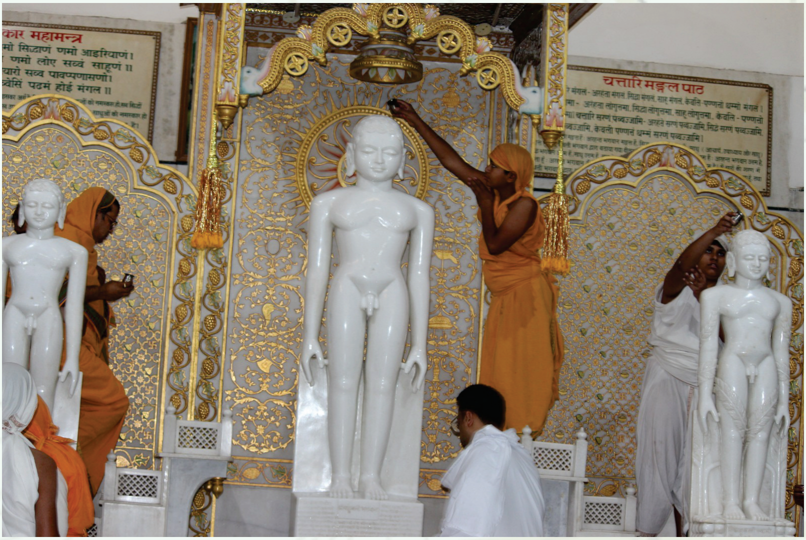

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र (e-पत्रिका)

वर्ष-25, अङ्क-3 (वी.नि.सं. 2551; वि.सं. 2082) मार्च 2025

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा....

मैं निज आतम कब ध्याऊँगा ॥
रागादिक परिनाम त्याग कै, समता सौं लौ लाऊँगा ॥टेक ॥

मन वच काय जोग थिर करकै,
ज्ञान समाधि लगाऊँगा।
कब हौं क्षिपकश्रेणि चढ़ि ध्याऊँ,
चारित मोह नशाऊँगा ॥1 ॥
चारों करम घातिया क्षय करि,
परमातम पद पाऊँगा।
ज्ञान दरश सुख बल भंडारा,
चार अघाति कहाऊँगा ॥2 ॥
परम निरंजन सिद्ध शुद्धपद,
परमानंद कहाऊँगा।
'द्यानत' यह संपति जब पाऊँ,
बहुरि न जग में आऊँगा ॥3 ॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक

स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़

स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक

डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

सम्पादक मण्डल

बालब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़

डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर

श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार

श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर

श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली

श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई

श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी

श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन

डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका

पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

क्या - कहाँ

चरणानुयोग	भव-भ्रमण का भय	5
द्रव्यानुयोग	श्री समयसार नाटक	9
	स्वानुभूतिदर्शन :	17
करणानुयोग	गुणस्थान सम्बन्धी चर्चा	20
	श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान	25
द्रव्यानुयोग	प्रत्येक समय का स्वतन्त्र	28
प्रथमानुयोग	कवि परिचय	30
	समाचार-दर्शन	32

चरणानुयोग

परम उपकारी जीवनशिल्पी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आत्महित की प्रेरणादायक विशिष्ट प्रवचनांश

भव-भ्रमण का भय

यह आत्मा अपने स्वभाव को भूलकर अनन्त काल से चौरासी लाख योनियों में जन्म धारण करके परिभ्रमण कर रहा है। यह शरीर तो नया है और शमशान में राख हो जानेवाला है। आत्मा के भान बिना ऐसे अनन्त शरीर हो चुके हैं और जो आत्मा का भान नहीं करेगा, उसे अभी अनन्त शरीर धारण करने पड़ेंगे।

अरे रे! मुझे कहाँ तक यह जन्म-मरण करने हैं। इस भव-भ्रमण का कहीं अन्त है या नहीं ? इस प्रकार जब तक चौरासी के अवतार का भय नहीं होता, तब तक आत्मा की प्रीति नहीं होती। 'भय बिना प्रीति नहीं' अर्थात् भव-भ्रमण का भय हुए बिना, आत्मा की प्रीति नहीं होती। सच्ची समझ ही विश्राम है। अनन्त काल से संसार में परिभ्रमण करते हुए कहीं विश्राम प्राप्त नहीं हुआ है। अब सच्ची समझ करना ही आत्मा का विश्राम है।

देखो, यह जीव एक सर्प देखने पर कितना अधिक भयभीत होता है क्योंकि इसे शरीर के प्रति ममत्व और प्रीति है। अरे! प्राणी को एक शरीर पर सर्प के डंसने का इतना भय है तो अनन्त जन्म-मरण का भय क्यों नहीं है ? आत्मा की समझ बिना अनन्त अवतार के दु:ख खड़े हैं, इस बात का तुझे भय क्यों नहीं है ? अरे! यह भव पूरा हुआ, वहीं दूसरा भव तैयार है; इस प्रकार एक के बाद दूसरा भव, तू अनन्त काल से कर रहा है। आत्मा स्वयं सच्ची समझ न करे तो जन्म-मरण का अभाव नहीं होता।

अरे रे! जिसे चौरासी के अवतार का डर नहीं है, वह जीव आत्मा को समझने की प्रीति नहीं करता। अरे! मुझे अब चौरासी के अवतार का

परिभ्रमण किस प्रकार मिटे? – ऐसा अन्दर में भव-भ्रमण का भय लगे तो आत्मा की दरकार करके सच्ची समझ का प्रयत्न करे।

देखो, यह जीव करोड़ों रुपये की आमदनीवाला सेठ तो अनन्त बार हुआ है और अनन्त बार ही घर-घर जाकर भीख माँगकर पेट भरनेवाला भिखारी भी हुआ है; आत्मा के भान बिना पुण्य करके बड़ा देव भी अनन्त बार हुआ है और पाप करके नारकी भी अनन्त बार हुआ है परन्तु अभी भी इसे भव-भ्रमण से थकान नहीं लगती है। आचार्यदेव कहते हैं कि भाई! 'अब मुझे भव नहीं चाहिए' – इस प्रकार यदि तुझे भव-भ्रमण से थकान लगी हो तो आत्मा की प्रीति करके उसका स्वरूप समझ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई शरण नहीं है।

मुख्यरूप से मनुष्यभव में ही सच्ची समझ उपलब्ध होती है – ऐसा मनुष्यभव महादुर्लभ है। मनुष्यभव तो आत्मा की समझ करने से ही सार्थक है। लोग कहते हैं 'चलो भाई मेला देखने, यह मनुष्यभव फिर से नहीं मिलेगा, चलो मेले में।' अरे भाई! क्या तुझे मेला देखने के लिये यह मनुष्यभव मिला है? अहो! अज्ञानी जीव यह मनुष्यभव प्राप्त करके, विषयभोगों में सुख मानकर अटक जाते हैं। जिस प्रकार बालक एक पेड़ा/मिष्ठान के मूल्य में लाखों का हार दे देता है; उसी प्रकार अज्ञानी जीव, पुण्य-पाप और विषयभोग के स्वाद में अमूल्य चेतनरूपी आत्मा को बेच देता है। महामूल्यवान् मनुष्यभव में आत्मा की समझ करने के बदले विषयभोग में जीवन गँवा देता है।

जो जीव, आत्मा की रुचि और मिठास छोड़कर धन, शरीर तथा भोग की रुचि और मिठास करता है, वह जीव, आत्मस्वभाव की हत्या और भावमरण करता है। ऐसे भावमरण का अभाव करने के लिए करुणा करके आचार्यदेव ने सत्शास्त्रों की रचना की है।

क्षणिक विकार को अपना मानकर, आत्मस्वभाव का अनादर करना ही

भावमरण है/मृत्यु है। इस भावमरण का अभाव, अमर आत्मस्वभाव की पहचान से होता है। इसलिए हे भाई! यदि तुझे भव-दु:खों का भय हो तो आत्मा को समझने की प्रीति कर! जन्म-मरण के अन्त की बात अपूर्व है, मूल्यवान् है और जिसे समझने की धगश जागृत होती है, उसे समझ में आ सके - इतनी सरल भी है।

जिस प्रकार कुँवारी कन्या, पिता के घर को अपना घर और उसकी पूँजी को अपनी पूँजी कहती है परन्तु जहाँ उसकी सगाई होती है तो तुरन्त ही यह मान्यता बदल जाती है और वह मानने लगती है कि पिता का घर और पूँजी मेरी नहीं है। जहाँ सगाई हुई है, वह घर और वर, मेरा है। देखो, मान्यता बदलने में कितनी देर लगती है? इसी प्रकार अनादि से संसार में परिभ्रमण करता हुआ जीव, शरीर को ही अपना घर मान लेता है परन्तु जहाँ ज्ञानी ने समझाया कि 'सर्व जीव हैं सिद्धसम, जो समझे वह होय' - अर्थात् सभी आत्माएँ अपने स्वभाव से सिद्ध समान ही हैं - ऐसी रुचि और ज्ञान हुआ, वहाँ एकदम रुचि बदल गयी और भासित हुआ कि यह पुण्य-पाप अथवा शरीर मेरा नहीं है; मैं तो सिद्ध समान हूँ, सिद्धपना ही मेरा स्वरूप है।

जिस प्रकार सगाई होने के बाद भी वह कन्या कुछ समय तक पिता के घर में रहती है तो भी लक्ष्य तो ससुराल में ही है; इसी प्रकार जहाँ आत्मस्वभाव का भान हुआ, वहाँ सिद्ध के साथ सगाई हो गयी; अब थोड़े समय अर्थात् दो-चार भव संसार में रहे तो भी धर्मी का लक्ष्य बदल गया है। सिद्ध जैसा स्वभाव वह मैं हूँ और यह मैं नहीं; इस प्रकार अन्तर्दृष्टि बदल गयी है।

भाई! यह तो अन्तर की बात अपूर्व है, जिसे अत्यन्त सरल रीति से कहा जा रहा है। दूसरी सब बातें तो सारी जिन्दगी में सुनी होगी, परन्तु यह आत्मा की अपूर्व बात है, जो भाग्यशाली को ही सुनने मिलती है। प्रभु! तुमने अपनी आत्मा की बात कभी प्रीति से सुनी भी नहीं है।

भाई ! अन्तर में विचार करो कि तुम्हें आत्मा का प्रेम कितना है ? और स्त्री–पुत्रादि के प्रति कितना प्रेम है ? अन्दर में जो पुण्य –पाप की वृत्तियाँ होती हैं, वही मैं हूँ – ऐसा मानकर उनकी प्रीति करता है परन्तु आत्मा कौन है ? – उसकी समझ नहीं करता। बाहर में 'यह ठीक है और यह ठीक नहीं है' – ऐसा मानकर अटक जाता है परन्तु आत्मा को तो पहचानता नहीं; इस प्रकार परवस्तु में इष्ट–अनिष्ट की कल्पना करके अज्ञानी तो संसार में परिभ्रमण किया करता है और ज्ञानी तो पर से भिन्न आत्मा को पहचानकर निर्मलपर्याय प्रगट करके सिद्ध हो जाता है।

आत्मा अपने स्वभाव से पूर्ण है और पर से रिक्त है। भगवान् आत्मा, ज्ञान से भरपूर और राग–द्वेष से खाली है – ऐसे आत्मा का भान करना, वह सुई में डोरा पिरोने जैसा है। जैसे, डोरा पिरोई हुई सुई गिर जाने पर भी खोती नहीं है; उसी प्रकार जिसने अपनी आत्मा में सम्यग्ज्ञानरूपी डोरा पिरोया है, उसे कदाचित् एक–दो भव हों तो भी उसका आत्मभान मिटता नहीं है और वह संसार में दीर्घ काल तक परिभ्रमण नहीं करता है। इसलिए जिसे भव–भ्रमण का भय हो, उसे इस मनुष्यभव में सच्ची समझरूपी डोरा आत्मा में पिरो लेना चाहिए। ●

(सम्यग्दर्शन, भाग–2, पृष्ठ 105–108)

मुनिराज की उदासीन परिणति

मुनिवरों की परिणति एकदम अन्तरस्वभाव में ढल गई है, इसलिए जगत की ओर से वे अत्यन्त उदासीन हो गये हैं। जैसे, बीस वर्ष के इकलौते पुत्र की मृत्यु पर उसकी माता अत्यन्त उदास–उदास हो जाती है, उसी प्रकार जिनका मोह मर गया है – ऐसे मुनिवर, संसार से एकदम उदासीन हो गये हैं। दृष्टान्त में माता की उदासीनता तो मोहकृत है, जबकि मुनिवरों की उदासीनता तो निर्ममत्व के कारण है। माता, पुत्र प्रेम के कारण उदास हुई है तो मुनि, चैतन्य के प्रेम के कारण संसार से उदासीन हुए हैं।

(आत्मधर्म, वर्ष सोलहवाँ, वीर निर्वाण सम्वत् 2486)

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

कर्त्ताकर्म क्रिया द्वार प्रवचन

अब श्लोक 46 के 28 वे पद में कहते हैं कि सम्यग्ज्ञान से आत्मस्वरूप की पहिचान होती है।

सम्यग्ज्ञान से आत्मस्वरूप की पहिचान होती है

जैसैं काहू बाजीगर चौहटै बजाइ ढोल,
नानारूप धरिकैं भगल-विद्या ठानी है।
तैसैं मैं अनादिकौ मिथ्यातकी तरंगनिसौं,
भरममैं धाइ बहु काय निज मानी है॥
अब ग्यानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी,
अपनी पराई सब सौंज पहिचानी है।
जाकै उदै होत परवांन ऐसी भांति भई,
निहचै हमारी जोति सोई हम जानी है॥28॥

अर्थः- जैसे कोई तमासगीर चौराहे पर ढोल बजावे और अनेक स्वांग बनाके ठगविद्या से लोगों को भ्रम में डाल देवे, उसी प्रकार मैं अनादिकाल से मिथ्यात्व के झकोरों से भ्रम में भूला रहा और अनेक शरीरों को अपनाया। अब ज्ञानज्योति का उदय हुआ जिससे मिथ्यादृष्टि हट गई, सब स्व-पर वस्तु की पहिचान हुई और उस ज्ञानकला के प्रगट होते ही ऐसी अवस्था प्राप्त हुई कि हमने अपनी असली आत्मज्योति पहिचान ली॥28॥

काव्य - 28 पर प्रवचन

जैसे कोई तमाशगीर (बहुरूपिया) अनेक प्रकार के वेष धरकर ठग विद्या से लोगों को ठगता है; उसीप्रकार अनादि से जीव मिथ्यात्व अर्थात् विपरीत मान्यता द्वारा स्वयं अपने को भ्रम में भूल रहा है। मैं शरीर की क्रिया कर सकता हूँ, दया-दानादि के भाव होते हैं वे मेरा धर्म है- ऐसे मिथ्या भ्रम में

मैंने ठग विद्या साधकर अपने आप को ही ठगा है और अनेक शरीर प्राप्त हुए उन्हें मैंने निजरूप से अपनाया है यह भी मेरा मिथ्या भ्रम ही था।

मैं तो त्रिकाल वीतराग स्वभावी हूँ और मेरे में से वीतरागता ही आती है– ऐसे भान के बिना (अज्ञानी ने) मैं रागी हूँ और अनेक प्रकार का राग होता है वह मेरा कार्य है– ऐसी भ्रमणा का सेवन किया है। ये स्त्री–पुत्रादिक मेरे हैं और मैं इनका हूँ, विकल्प मेरा है और मैं उसका हूँ। इसप्रकार परद्रव्य और परभाव में ही एकत्व माना है। इसकारण 'दोड़त–दोड़त, दौड़ियो जेती मन की दौड़'–कभी तीर्थ में दौड़ा, मानों कि सम्मेदशिखर की यात्रा से मेरा कल्याण हो जायेगा; परन्तु (अन्तर में) कल्याण का नाथ विराजमान है, उसके सन्मुख तो देखा ही नहीं। छह–छह महीने के उपवास किये, भगवान के सामने सौ–सौ बार नमस्कार किया– ऐसी अनेक क्रियायें की; वे सब मजदूरी है–जड़ की क्रिया है। आत्मा की क्रिया नहीं। तथा राग की मंदता से धर्म माना है; परन्तु राग तो परभाव है, उससे धर्म कैसे होगा ?तो भी जीव ने पूर्व में मिथ्यात्व की शल्य में ऐसे अनेक प्रकार के भाव किये हैं।

अब जहाँ ज्ञानज्योति का उदय हुआ–मैं भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप हूँ–ऐसी एकाग्रता से भान आया वहाँ मिथ्याबुद्धि मिट जाती है। अरे! मैं तो एक विकल्प से लेकर सम्पूर्ण जगत से उस पार (भिन्न) हूँ। मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ, इसके अतिरिक्त कोई भी परभाव मेरे नहीं है।

जैसे नारद द्वारा ललचाया हुआ राजा द्रोपदी का अपहरण करके धातकीखण्ड द्वीप में ले गया था, यह पता पड़ते ही पांडव और श्रीकृष्ण उसको लाने के लिये धातकीखण्ड द्वीप में जाते हैं और वहाँ शंखध्वनि करते हैं जिससे वहाँ के राजा की सेना भगने लगती है। उसी प्रकार भगवान आत्मा के दर्शन और ज्ञान होने पर मोह की सेना भगने लगती है। राजा स्वयं स्त्री के वस्त्र पहिनकर श्रीकृष्ण के चरणों में जाता है; उसी प्रकार समस्त विकार शिथिल पड़ जाते हैं। (अज्ञानी जन द्रोपदी के पाँच पति होना बतलाते हैं;

परन्तु उसका पति तो एकमात्र अर्जुन ही था। वह तो सती थी। उसके लिये अर्जुन के अतिरिक्त समस्त पुरुष पिता अथवा पुत्र समान थे।)

सम्यग्दर्शन होने पर विकल्प की राख हो जाती है और सम्यग्दर्शन के बिना तो सब एक बिना की शून्य है, उससे कोई विकल्प का अभाव नहीं होता है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होने पर किसी विकल्प की ताकत नहीं रहती।

नवतत्व की श्रद्धा सम्यग्दर्शन नहीं है, देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा सम्यग्दर्शन नहीं है। अखण्डानंद प्रभु आत्मा का अनुभव करके प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है। इस सम्यग्दर्शन के बिना व्रत, तप भी एक रहित शून्य के समान है। जहाँ ज्ञानकला जागती है वहाँ समस्त रागादि विकल्प जाल के समान लगते हैं। भले ही वे नय के विकल्प हों तो भी वे आत्मा के अमृत की जाति नहीं है, जहर की जाति है।

नये लोगों को ऐसा लगता है कि हमने तो ऐसी बात कहीं सुनी ही नही। भाई! परमेश्वरदेव ने यह तेरे ही घर की बात कही है। परन्तु अरे! यह बात इसको सुनने को भी नहीं मिली तो यह कब समझे और अनुभव करे ?क्या हो.. ?जगत लुटता है और वह भी प्रसन्नता पूर्वक लुटता है-उत्साह से लुटता है और यह बात तो बी.ए. अथवा एल.एल.बी. की बात है-ऐसा कहकर छोड़ देता है; परन्तु भाई! यह तो पहली इकाई की बात है।

ज्ञानकला जागने पर भ्रमदृष्टि भग जाती है और स्व तथा पर का स्वरूप जैसा है वैसा ज्ञात होता है। मैं आनन्दस्वरूप आत्मा हूँ और विकल्पादि सब पर है-इसप्रकार स्व-पर दोनों का सच्चा ज्ञान हो जाता है। मैं तो आनन्द का सागर हूँ और रागादि विकार तो दु:ख के सागर हैं और शरीरादि परद्रव्य तो जड़ हैं।

पूर्व में आ गया है कि मैं तो चैतन्यरूप, अनूप और अमूर्त्त हूँ, मेरा स्वरूप तो सदा सिद्धसमान है।

'चेतनरूप अनूप अमूरत सिद्ध समान सदा पद मेरौ,
मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरौ,

ज्ञानकला उपजी अब मोहि कहौं गुन नाटक आगम केरौ
जागु प्रसाद सधै सिवमारग बैगि मिटे भववास वसेरौ॥

इस अमृतस्वरूप भगवान आत्मा को शरीर और राग में रहना कलंक है। किन्तु इसको अपनी महानता का पता नहीं है, इसकारण पामर होकर परिभ्रमण करता है। परन्तु यदि यही आत्मा जग जाये तो (मोहरूपी) शत्रु की सेना भग जाती है। जैसे युद्ध के लिये तत्पर राजपूत छिपता नहीं है; उसी प्रकार ज्ञानकला से जागृत आत्मा छिपा नहीं रहता है। आत्मा के जगने का नाम ही धर्म है। हमारी चैतन्यज्योत जागृत हुई अब राग-द्वेष कोई हमारे नहीं हैं- ऐसे अनुभव का नाम सम्यग्दर्शन है।

अब 29वें काव्य में पण्डित बनारसीदासजी यह बताते हैं कि ज्ञानी को आत्मानुभव में कैसा विचार होता है।

ज्ञानी का आत्मानुभव में विचार

जैसैं महा रतनकी ज्योतिमैं लहरि उठै,
जल की तरंग जैसैं लीन होय जल मैं।
तैसैं सुद्ध आतम दरब परजाय करि,
उपजै बिनसै थिर रहै निज थल मैं॥
ऐसै अविकल्पी अजलपी अनंदरूपी,
अनादि अनंत गहि लीजै एक पलमैं।
ताकौ अनुभव कीजै परम पीयूष पीजै,
बंधकौ विलास डारि दीजै पुद्‌गलमैं॥29॥

अर्थः- जिस प्रकार उत्तम रत्न की ज्योति में चमक उठती है, अथवा जल में तरंग उठती है और उसी में समा जाती है, उसी प्रकार शुद्ध आत्मा, पर्यायापेक्षा उपजता और नष्ट होता है, तथा द्रव्यापेक्षा अपने स्वरूप में स्थिर-अवस्थित रहता है। ऐसे निर्विकल्प, नित्य, आनंदरूप, अनादि, अनंत, शुद्ध आत्मा को तत्काल ग्रहण कीजिये। उसी का अनुभव करके

परम अमृत-रस पीजिये और कर्मबंध के विस्तार को पुद्गल में छोड़ दीजिये ॥29 ॥

काव्य - 29 पर प्रवचन

भगवान आत्मा अखण्डानंद ध्रुव चैतन्यस्वरूप है। उसके सन्मुख होकर और रागादि विकल्पों से विमुख होकर वस्तु के स्वभाव का अनुभव करने पर धर्म होता है और तभी उसकी मुक्ति के उपाय का प्रारम्भ होता है।

जैसे किसी महारत्न में चमक उठती है और उसी में समा जाती है, चमक उठे और समा जाए-इसप्रकार रत्न में ही चमक का उठना और समाना होता है। तथा जिस प्रकार समुद्र में तरंग उठती है और उसी में समा जाती है। पानी तो कायम है और उसमें प्रतिक्षण तरंग उठती है व उसी में समा जाती है। उसी प्रकार शुद्धात्म द्रव्य में पर्यायें उत्पन्न होती है और विनष्ट होती है; परन्तु ज्ञायक भाव तो सदा ऐसा एकरूप रहता है।

धर्मी धर्म करने के काल में ऐसा विचार करता है और पश्चात् अनुभवता है कि मैं शुद्ध ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण ज्ञायकभाव हूँ। मैं वस्तुरूप से तो त्रिकाल एकरूप ध्रुव हूँ और मेरी पर्याय में उपजना-विनशना होता है। पानी की तरंग उत्पन्न होती है और उसी में समा जाती है तथा पानीपना कायम रहता है। उसी प्रकार ज्ञायकभाव ऐसा का ऐसा रहता है। जैसे रत्न की चमक-जगमगाहट होती है और उसी में समाती है तथा रत्न ऐसा का ऐसा रहता है; उसी प्रकार यह निर्मलानन्द चैतन्यरत्न अत्यन्त शुद्ध है और इसमें वर्तमान निर्मलदशा उत्पन्न होती है और विलय पाती है, उत्पन्न होती है और विलय पाती है- ऐसा मेरा स्वरूप है। राग उत्पन्न होता है और विलय पाता है वह मेरी चीज में नहीं है। जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-शान्ति की पर्याय प्रगट होती है वह दूसरे समय अन्दर में समा जाती है-यह सब उपजना-विनशना अपने स्वक्षेत्र में ही होता है, पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति के विकल्प हैं; परन्तु वे आत्मा नहीं है, न आत्मा की अनुभूति के साधन हैं; वे तो विभावभाव हैं।

मूलवस्तु क्या है–इस बात का पता नहीं होने से धर्म नहीं होता है। सब्जी लेने जाए तो वहाँ यह तो पता होना चाहिये न कि कौनसी सब्जी लेनी है?ज्येष्ठ का महीना है, आम का मौसम है तो रस के साथ करेला चलेंगे–ऐसा पता होवे तो करेले की सब्जी लेकर आवे। कपड़ा खरीदने जाते हैं तो वहाँ किसके लिये, किस भाव का, कैसा कपड़ा लेना है–यह सब पता होने पर ही व्यक्ति कपड़ा ला सकता है; उसी प्रकार चैतन्यरस से भरा आत्मा है वही मैं हूँ, यह शरीर–वाणी और मन का परिणमन है वह मेरा नहीं है–जो इस प्रकार समझता हो वह स्वभाव के सन्मुख होकर और राग से विमुख होकर अनुभूति प्राप्त कर सकता है; अन्यथा अभी जिसको वस्तु के स्वरूप का ही पता नहीं है वह उसकी अनुभूति नहीं कर सकता। जब दुनिया के काम में मूर्खता नहीं चलती तो आत्मा के काम में मूर्खता कैसे चलेगी? वस्तु के स्वरूप का पता न हो और मुझ को धर्म करना है..ऐसे धर्म नहीं होता भाई!

(वस्तु) 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य युक्तम् सत्' है–ऐसे वस्तु के स्वरूप का पता हो वह यह समझ सकता है कि मैं अपने स्वरूप से ध्रुव हूँ और उसकी दृष्टि और उसमें स्थिरता करने पर अन्दर से ज्ञान–आनन्द की दशा प्रगट होती है तथा उसी में समा जाती है–ऐसा मेरा उत्पाद–व्यय– ध्रुवस्वरूप है और मेरी वस्तु में अनन्त शक्तियां विद्यमान है। मैं खाली नहीं हूँ, भरचक भरा हूँ। इस प्रकार जो अपने स्वरूप को समझता है वह उसके सन्मुख होकर ऐसे स्वरूप का अनुभव कर सकता है। ऐसे अनन्त गुण सम्पन्न आत्मा में निर्मल दशा प्रगट हो और उसी में समाये इतना ही आत्मा है। राग उत्पन्न होता है और समाता है यह वस्तु का स्वरूप नहीं है।

आत्मा अकेला ज्ञान का सूर्य है। उसमें एकाग्र होने पर जो निर्मल वीतरागी अवस्था प्रकट होती है वह उसकी अवस्था है। वह अवस्था दूसरे क्षण अन्तर में समा जाती है और नई अवस्था प्रकट होती है–यही आत्मा का कार्य है। रागरूप से परिणमना अथवा पर के कार्य करना आत्मा का कार्य

नहीं है। अज्ञानी को ऐसा लगता है कि आत्मा के बिना जड़ के कोई कार्य नहीं हो सकते, आत्मा करे तभी होते हैं; (परन्तु ऐसा नहीं है।)

'धर्म' अर्थात् आत्मा की वीतरागी, निर्मल, निर्दोष दशा। तो इस दशा का धारक आत्मा कैसा है, उसका त्रिकाल स्वरूप क्या है और उत्पन्न-विलय ध्रुवपना किसप्रकार है-यह प्रथम ही समझना चाहिये। मूलस्वरूप समझे बिना सामायिक करे, प्रतिक्रमण करे, अथवा प्रौषध करे तो इससे कोई आत्मा का धर्म प्रकट नहीं होता। इस जीव ने बाहर से साधुपना तो अनन्तबार लिया है; परन्तु भव का अभाव कभी नहीं हुआ। अत: निश्चित होता है कि राग भले ही मंद हो, तथापि वह आत्मा की प्राप्ति का साधन नहीं होता। कारण कि राग स्वयं अचेतन है, तो वह चेतन की प्राप्ति में साधन कैसे हो सकता हैं ?

हमने एक जगह 8 रत्ति वजन का अस्सी हजार की कीमत का हीरा देखा था। उसकी चमक तो कोई अलग थी ही, उसके रखने की डिब्बी भी अलग ही थी। इसी प्रकार इस चैतन्यरत्न की चमक कोई अलौकिक है। यह रत्न इस शरीररूपी डिब्बी में रहता है; परन्तु यह शरीर से भिन्न वस्तु है। चैतन्य में तो अनन्त-अनन्त आनन्दादि शक्तियाँ भरी हुई हैं। चैतन्य एक असंख्यात प्रदेशी वस्तु है। उसमें अनन्त गुण ध्रुवरूप से है। इसलिये गुण तो कायम रहते हैं और उसमें एकाग्र होने पर नई-नई निर्मल पर्यायें उत्पन्न होती है और उसी में समा जाती है। आत्मा में अकेला ज्ञानगुण ही नहीं है; परन्तु ऐसे तो अनन्त गुण हैं। आत्मा को ज्ञानगुण की प्रधानता से ज्ञानस्वरूप कहते है; परन्तु वही आत्मा श्रद्धा, वीर्य आदि अनन्त गुणस्वरुप एक ध्रुव वस्तु है। जैसे मीठापन वह शक्कर-ऐसा कहा जाता है; परन्तु शक्कर में मीठेपन के उपरान्त सफेदी, सुगंधता इत्यादि अनन्त गुण होते हैं।

जो जानता है, निर्णय करता है, स्वतंत्ररूप से देखने-जानने का कार्य करता है-ऐसे आत्मा के नित्यानंद ध्रुवस्वभाव पर नजर करने से निर्मलदशा प्रगट होती है। ऐसे धर्मी को राग होता है उसको भी वह जानता है, राग मेरा

है-ऐसा नहीं मानता। जो निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता प्रगट हुई है वही मेरा धर्म है। यह दशा नई उत्पन्न होती है, इसलिये इसको पर्याय कहा जाता है। पर्याय एकसमय रहकर दूसरे समय व्यय होती है; परन्तु व्यय होकर कहीं बाहर नहीं जाती, अंदर में ही जाती है। जैसे समुद्र की लहर उत्पन्न होकर समुद्र में ही समा जाती है; उसी प्रकार द्रव्य की पर्याय उत्पन्न होकर द्रव्य में ही समा जाती है। उसका शरीर, वाणी, मन अथवा पुण्य-पाप के विकल्प के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसकारण धर्मी उसको अपना स्वरूप नहीं मानते।

शुद्धात्मा के आश्रय से शान्ति की, आनन्द की, स्वच्छता की, वीतरागता की, ज्ञान की, श्रद्धा की-इत्यादि जो पर्यायें होती हैं वे सब एक समय होती हैं और दूसरे समय में समा जाती हैं, वहाँ दूसरे समय में दूसरी पर्यायें उत्पन्न होती है-इसप्रकार उत्पाद-व्यय और ध्रुवपना रखती वस्तु स्वयं सदा स्थिर रहती है। जो ऐसा वस्तुस्वरूप समझे बिना ध्यान करने बैठेगा तो ध्यान नहीं कर सकेगा; क्योंकि स्वरूप की समझरूप पात्रता के बिना ध्यान कैसे हो सकता है?

'ऐसे अविकल्पी अजलपी आनन्दरूपी अनादि अनन्त गहि लीजै एक पल में'-

आत्मा कैसा है?-अविकल्पी है। पुण्य-पाप, दया, दान, व्रतादि का विकल्प वह आत्मा का नहीं है, इसलिये आत्मा अविकल्पी है-राग रहित निर्विकल्प वस्तु है। अजल्पी है अर्थात् जल्प रहित स्थिर बिम्ब प्रभु है। जैसे मेरु पर्वत किसी का चलाया चलित नहीं होता-ऐसा स्थिर है; उसी प्रकार आत्मा को शुभाशुभभावों से नुकसान नहीं पहुचें और केवलज्ञान से वृद्धि न हो-ऐसा आत्मा ध्रुव स्थिर-बिम्ब है। शुभभाव हो या अशुभभाव हो, इनसे ध्रुव आत्मतत्व में कुछ बिगाड़ नहीं हो जाता और पर्याय में केवलज्ञान प्रगट हो जाये तो भी ध्रुव में कुछ वृद्धि नहीं हो जाती। आत्मा ऐसा अनादि-अनंत ध्रुव है, अचल और अविचल है। क्रमशः

स्वानुभूतिदर्शन : बहिनश्री की तत्त्वचर्चा

प्रश्न : ज्ञानी को स्थिरता में वृद्धि बिना प्रयत्न के हो जाती है या उसके लिये अलग पुरुषार्थ करना पड़ता है ?

समाधान : स्थिरता अपने आप नहीं बढ़ती, किन्तु स्वयं अन्तर में लीनता का प्रयत्न करता है तो होती है। स्वयं कुछ करे ही नहीं और अपने आप लीनता हो जाय ऐसा नहीं होता। ज्ञायक की दृष्टि से—उसके बल से लीनता होती है। ज्ञानी का उपयोग बारम्बार बाहर जाता है तथापि वह मर्यादा में रहकर बाहर जाता है। स्वरूप की ओर अपने उपयोग की डोर को खींचे रखता है, इसलिए उपयोग अधिक बाहर नहीं जाने देता। 'मैं तो ज्ञायक हूँ, यह मैं नहीं... यह मैं नहीं' इस प्रकार बारम्बार ज्ञायक के जोर में स्वयं पुरुषार्थ करता ही रहता है। उसे विकल्पपूर्वक पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता, सहज ही करता है; तथा उसमें हठ भी करनी नहीं पड़ती अर्थात् पुरुषार्थ नहीं होता हो और उसे बारम्बार हठपूर्वक करना पड़े, ऐसा नहीं होता। उसे जबरन करना पड़े ऐसा नहीं होता; परन्तु स्वयं ने ज्ञायक को पहिचाना है, इसलिए सहज ही उस ओर का पुरुषार्थ करता है। जो अपना स्वभाव हो वह सहज होता है, उसी प्रकार पुरुषार्थ भी सहज होता है।

मुमुक्षु : 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसा ख्याल में रहता ही है ?

बहिनश्री : 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ' ऐसा उसे रहता ही है। राग के प्रति उसकी रुचि नहीं है, इसलिए राग से छूटता जाता है और अपनी ओर झुकता जाता है। इस भाँति पुरुषार्थ सहज होता है; हठपूर्वक या जबरन नहीं होता। उसे आत्मा की रुचि है, इसलिए रुचि और पुरुषार्थ आनन्द से करता है, सहज होता है।

मुमुक्षु : 'सहज' का अर्थ आनंद से होता है। आपने 'आनंद' शब्द अच्छा कहा।

बहिनश्री : पुरुषार्थ आनंद से करता है, हठ से नहीं। हठ अर्थात् खेदपूर्वक करता है ऐसा नहीं, परंतु रुचिपूर्वक आनंद से करता है ऐसा अर्थ

है। उसे पुरुषार्थ करने में रस आता है एवं अपना स्वरूप है इसलिये सहज उस ओर स्वयं आनंद एवं रुचिपूर्वक जाता है।

मुमुक्षु : क्या रुचिपूर्वक तथा रसपूर्वक सहज पुरुषार्थ है ?

बहिनश्री : बाहर के दृष्टांत में, जिस प्रकार भगवान के-गुरु के दर्शन का अपने को रस लगा हो तो उनके दर्शन करने आनंद से जाता है, हठ से नहीं जाता; उसी प्रकार जिसे ज्ञायक का प्रेम लगा हो वह आनंदपूर्वक उस ओर जाता है, हठपूर्वक नहीं; किंतु सहज जाता है, क्योंकि अंतर में रस और रुचि है।

जैसे पानी पानी को खींचता हुआ पानी की ओर जाता है, वैसे ही ज्ञायक ज्ञायक को खींचता हुआ ज्ञायक की ओर जाता है और वह सहज है। ज्ञायक ज्ञायक की डोर अपनी ओर खींचता है, वहाँ हठ या खेद नहीं है, आनंद है। अपना स्वभाव अपने को अनुकूल होता है, प्रतिकूल नहीं होता, इसलिए वह सहज है। भीतर जाना रुचता है, बाहर जाना रुचता ही नहीं, तथा भीतर जाये तो अपने को संतोष व शांति का अनुभव होता है, इसलिये वह कार्य उमंग से करता है, वह बोझरूप नहीं लगता।

प्रश्न : आत्मा की पहिचान क्या महिमापूर्वक होती है ?

समाधान : आत्मा की पहिचान महिमापूर्वक होती है; शुष्क विचार करे तो वह छूट जाता है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है ऐसा बोल दिया, लेकिन उसको ग्रहण नहीं किया तो ऐसे पहिचान नहीं होती। उसकी महिमा आनी चाहिये। अनंत गुणों से भरपूर, आश्चर्यकारी, आनंदकारी, महिमावंत आत्मा है—ऐसा विचार कर भीतर में जाये तब भेदज्ञान हो। अनंत गुणों से भरपूर चैतन्य चमत्कारमय चैतन्यदेव मैं हूँ, मैं दिव्यता से भरपूर हूँ—ऐसी चैतन्य की अद्‌भुतता अंतर से लगनी चाहिये। फिर आत्मा को ग्रहण करे तो गहराई आती है। आत्मा की महिमा न लगे और बाहर से ज्ञानस्वरूप... ज्ञानस्वरूप... ऐसा बोलने लगे अर्थात् ऊपर-ऊपर से 'ज्ञानस्वरूप.... ज्ञानस्वरूप' किया करे तो कुछ नहीं होता; इसकी महिमा आनी चाहिये। 'मैं

ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप कोई अद्भुत आत्मा हूँ—ऐसी महिमा आये तो भीतर में चला जाता है।

मुमुक्षु : आत्मा की महिमा कैसे आये?

बहिनश्री : महिमा अर्थात् आत्मा की अद्भुतता लगनी चाहिये, आश्चर्य लगना चाहिये कि यह कोई अद्भुत तत्त्व है। मेरा आत्मा कोई सामान्य नहीं है, सिद्ध भगवान जैसा है और सर्व लोक के ऊपर तैरता है—ऐसा मैं अद्भुत हूँ। जहाँ रुचि हो, उपयोग वहीं लगता है। जिसको भगवान की महिमा होती है कि भगवान वीतरागस्वरूप हैं; उसे जिनमंदिर में भी भगवान के दर्शन करते समय भगवान की प्रतिमा को देखकर आश्चर्य लगता है कि कैसा भगवान! ठीक उसी प्रकार चैतन्यभगवान का आश्चर्य लगना चाहिये कि मेरा वीतरागी आत्मा भी ऐसा ही है! फिर वह (आश्चर्य) छूटता नहीं। आत्मा की महिमा लगे तो उसे देखने के लिये उपयोग बारम्बार वहीं जाये; किंतु महिमा न आये तो मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसा छूट जाता है।

भगवान की महिमा लगे तो मंदिर में प्रतिमाजी को देखकर शांति होती है कि—भगवान कैसे वीतराग हैं। ऐसे आत्मभगवान की महिमा आनी चाहिये। प्रतिमाजी ऐसी हैं तो साक्षात् भगवान कैसे होंगे!!—ऐसे साक्षात् भगवान की महिमा आये वैसे आत्मभगवान की महिमा आनी चाहिये। यदि चित्त वहाँ ही लगे तो अन्यत्र कहीं भी नहीं लगता।

मुमुक्षु : स्वयं महिमावान पदार्थ होते हुए भी स्वयं की महिमा क्यों नहीं आती?

बहिनश्री : बाहर की महिमा है बाहर में रुक रहा है, इसलिये स्वयं की महिमा नहीं आती। बाहर के पदार्थों में रुक जाता है, उनकी महिमा आती है; बाहर देखने में आश्चर्य लगता है कि यह देखूँ—वह देखूँ... ऐसे सब

शेष पृष्ठ 27 पर.....

गुणस्थान सम्बन्धी चर्चा

6. बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की अपेक्षा भेद :

(1) पहले से तीसरे गुणस्थानवर्ती सभी जीव बहिरात्मा है।

(2) चौथे से बारहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव अन्तरात्मा है।

(3) तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव परमात्मा हैं।

7. उपयोग की अपेक्षा :

1. पहले से तीसरे गुणस्थानवर्ती सभी जीव मुख्यतया अशुभोपयोगी हैं।

2. चौथे से छठवें गुणस्थानवर्ती जीव मुख्यतया शुभोपयोगी और गौणरूप से शुद्धोपयोगी हैं।

3. सातवें से चौदहवें गुणस्थानवर्ती सभी जीव शुद्धोपयोगी हैं। एक अपेक्षा से चौथे गुणस्थान से लगाकर चौदहवें गुणस्थान पर्यन्त के सर्व जीव धर्मात्मा कहलाते हैं।

गुणस्थानों में जीवों की संख्या

1. प्रथम गुणस्थान में जीवों की संख्या अनंतानंत है।

2. द्वितीय गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

3. तृतीय गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

4. चतुर्थ गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

5. पंचम गुणस्थान में जीवों की संख्या पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

6. प्रथम गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या जगत श्रेणी के असंख्यातवें भाग प्रमाण है।

7. द्वितीय गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या बावन (52) करोड़ है।

8. तृतीय गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या एक सौ चार (104) करोड़ है।

9. चतुर्थ गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या सात सौ (700) करोड़ है।

10. पंचम गुणस्थान में मनुष्यों की अपेक्षा संख्या तेरह (13) करोड़ है।

11. छठवें गुणस्थान में जीवों की संख्या पाँच करोड़, तिरानवें लाख, अट्ठानवे हजार, दो सौ छह (5,93,98,206) है।

12. सातवें गुणस्थान में जीवों की संख्या दो करोड़, छियानवे लाख, निन्यानवें हजार, एक सौ तीन (2,96,99,103) है।

13. उपशम श्रेणी के आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें गुणस्थानों में 299,299,299,299 जीव हैं।

14. उपशम श्रेणी के चारों गुणस्थानों में जीवों की संख्या 1196है।

15. क्षपक श्रेणी के आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें गुणस्थानों में जीवों की संख्या 598,598,598,598है।

16. क्षपक श्रेणी के चारों गुणस्थानों में जीवों की संख्या 2392 है।

17. तेरहवें गुणस्थान में जीवों की संख्या आठ लाख, अठानवे हजार, पाँच सौ दो (8,98,502) है।

18. चौदहवें गुणस्थान में जीवों की संख्या 598है।

19. छठवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक जीवों की संख्या का जोड है - 5,98,98,206+2,96,99,103+1,196+2,392+8,98,502 +598=8,99,99,997।

20. ये तीन कम नौ करोड़ मुनिराज भावलिंगी हैं।

21. द्रव्यलिंगी मुनिराज पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, पाँचवें गुणस्थान में भी होते हैं।

बन्ध, उदय, सत्त्व

गुणस्थानों में बन्ध सम्बन्धी सामान्य नियम

1. मिथ्यात्व की प्रधानता से 16प्रकृति का बंध होता है।

2. अनंतानुबंधी कषाय उदय जनित अविरती से 25 प्रकृति का बंध होता है।

3. अप्रत्याख्यानावरण कषायोदयजनित अविरति से 10 प्रकृति का बंध होता है।

4. प्रत्याख्यानावरण कषायोदजनित अविरति से 4 प्रकृति का बंध होता है।

5. संज्वलन के तीव्र उदयजनित प्रमाद से 6प्रकृति का बंध होता है।

6. संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय से 58प्रकृति का बंध होता है।

7. योग से एक साता वेदनीय का बंध होता है।

8. तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यग्दृष्टि के चतुर्थ गुणस्थान से आठवें गुणस्थान के छठे भाग पर्यंत ही होता है।

9. आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का बंध सातवें से आठवें गुणस्थान के छठे भाग पर्यंत ही होता है।

10. तीसरे गुणस्थान में किसी भी आयु का बंध नहीं होता है।

गुणस्थानों में मूलकर्मों का बंध

1. ज्ञानावरण कर्म का बंध पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

2. दर्शनावरण कर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

3. मोहनीय कर्म का बंध पहले गुणस्थान से नौवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

4. अंतराय कर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

5. आयु कर्म का बंध पहले से सातवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

6. नामकर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

7. गोत्रकर्म का बंध पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

8. वेदनीय कर्म का बंध पहले से तेरहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

गुणस्थानों में उदय

1. तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में ही होता है।

2. आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का उदय छठवें गुणस्थान में ही होता है।

3. सम्यग्मिथ्यात्व का उदय तीसरे गुणस्थान में ही होता है।

4. सम्यग्प्रकृति का उदय चौथे से सातवें गुणस्थान पर्यंत ही होता है।

5. नरकगत्यानुपूर्वी का उदय दूसरे गुणस्थान में नहीं होता है।

6. चौथे गुणस्थान में चारों आनुपूर्वी का उदय होता है।

7. पहला गुणस्थान एक मिथ्यात्व और चार अनंतानुबंधी के उदय से होता है।

8. दूसरा गुणस्थान अनंतानुबंधी के उदय से होता है।

9. तीसरा गुणस्थान सम्यग्मिथ्यात्व के उदय से होता है।

10. चौथा गुणस्थान सात प्रकृतियाँ—दर्शन मोहनीय की 3 और चारित्र मोहनीय की 4 प्रकृतियों के उपशम, क्षय या एक सम्यग्प्रकृति के उदय के साथ अप्रत्याख्यानावरण 4, प्रत्याख्यानावरण 4, संज्वलन 4 और नोकषाय 9—इन इक्कीस प्रकृति के उदय से होता है।

11. पाँचवाँ गुणस्थान चारित्र मोहनीय की 17 प्रकृतियों के उदय से होता है (प्रत्याख्यान 4, संज्वलन 4 और नौ नोकषाय)

12. छठा गुणस्थान संज्वलन व नौ नोकषाय के तीव्र उदय से होता है।

13. सातवाँ गुणस्थान संज्वलन और नोकषाय के मंद उदय से होता है।

14. आठवाँ गुणस्थान संज्वलन और नौ नोकषाय के मंदतर उदय से होता है।

15. नवाँ गुणस्थान संज्वलन और नौ नोकषाय के मंदतम उदय से होता है।

16. दसवाँ गुणस्थान संज्वलन सूक्ष्म लोभ के उदय से होता है।

17. ग्यारहवाँ गुणस्थान मोहनीय कर्म के उपशम से होता है।

18. बारहवाँ गुणस्थान मोहनीय कर्म के क्षय से होता है।

19. तेरहवाँ गुणस्थान घातिया कर्म के क्षय से होता है।

गुणस्थानों में मूलकर्मों का उदय

1. ज्ञानावरण कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
2. दर्शनावरण कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
3. मोहनीय कर्म का उदय पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
4. अंतराय कर्म का उदय पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
5. नामकर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
6. आयु कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
7. गोत्र कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।
8. वेदनीय कर्म का उदय पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत होता है।

गुणस्थानों में मूलकर्मों का सत्व

1. ज्ञानावरण कर्म का पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
2. दर्शनावरण कर्म का पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
3. मोहनीय कर्म का पहले से दसवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
4. अंतराय कर्म का पहले से बारहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
5. नाम कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
6. आयु कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
7. गोत्र कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।
8. वेदनीय कर्म का पहले से चौदहवें गुणस्थान पर्यंत सत्त्व रहता है।●

करणानुयोग

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

सच देखा जाए तो देशना तो देशनालब्धि में निमित्त है। उसके बिना प्रथमोपशम हो ही नहीं सकता, इसलिए स्थूलरूप से उपचार से देशना को या देशना जिनके द्वारा प्राप्त होती है, उन सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को सम्यग्दर्शन का निमित्त कह दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'जो तत्त्वार्थसूत्र में सम्यग्दर्शन के दो भेद (निसर्गज और अधिगमज) बताए हैं, उनमें से दूसरे (पर निमित्त) के उपदेश से जो प्राप्त होता है, वह अधिगमज है और किसी के उपदेश (पर निमित्त) बिना ही जो प्राप्त हो, वह निसर्गज है।' और जिसको इसी भव में देशना मिली हो तो उसके पश्चात् होने वाले सम्यग्दर्शन को अधिगमज सम्यग्दर्शन कहते हैं, परन्तु देशना बिना ही सम्यग्दर्शन हो जाए, क्योंकि देशनालब्धि सम्यक्त्व में निमित्त है और सम्यग्दर्शन तो पंचलब्धि पूर्वक होता है। ये लब्धियाँ अन्तर्मुहूर्त में ही पूर्ण होती है। ऐसा सर्वथा निसर्गज सम्यग्दर्शन होता ही नहीं।

नारकी और देवों में अवधिज्ञान पाया जाता है। अवधिज्ञान द्वारा वे पूर्व की देशना को जानते हैं। मनुष्य और तिर्यंचों में जातिस्मरण ज्ञान से भी पूर्व भव की देशना याद आती है अथवा पूर्व में सुना हुआ, अभ्यास किया हुआ उपदेश धारणा ज्ञान में होगा तो उसके कारण अगले भव में भी सम्यक्त्व हो सकता है।

अगले भव में उसके शब्द याद न भी हो तो भी तत्त्वों का भाव ख्याल में आता है और अन्तर्मुख विचारों में तत्त्वों का भावभासन होने लगता है। उसमें बाह्य निमित्त जिनबिम्ब दर्शन; स्वर्गों में ऋद्धि, वैभव आदि देशना या नरकों में तीव्र वेदना का होना; मनुष्यों में धर्मश्रवण, ग्रंथों का पढ़ना या

उपदेश सुनना, स्वाध्याय आदि हो सकते हैं। इसको बाह्य देशना कहा या देशना कहा और देशनालब्धि में जीव उसका श्रवण, ग्रहण, धारण करता है, उस पर विचार करता है, निर्धारण करता है, केवल सुनना मात्र देशनालब्धि नहीं कहलाती, अपितु जीवादि द्रव्यों व तत्त्वों को पहचानना स्व-पर का भेदविज्ञान करना। यह सब देशनालब्धि है।

देशनालब्धि के वर्णन में हमने देखा कि श्रवण, ग्रहण, धारण और निर्धारण इसके अंग हैं। दिव्यध्वनि में चारों अनुयोगों का कथन आता है; अतः चारों ही अनुयोग देशनारूप है। भगवान की वाणी सुनने-समझने के भाव होना तथा उसके अवधारण के भावों का होना ही देशनालब्धि है। इस प्रकार देशनालब्धि का स्वरूप है।

प्रायोग्य लब्धि —

आचार्य नेमिचंद्र कहते हैं —

अंतोकोडाकोडी विट्ठाणे ठिदिरसाण जं करणं।
पाउग्गलद्धिणामा भव्वा भव्वेसु सामण्णा।

कर्मों की स्थिति को अन्तः कोडाकोडी तथा अनुभाग को द्विस्थानिक करने को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं। यह लब्धि भव्य और अभव्य के समानरूप से होती है।

पंचेन्द्रियादि स्वरूप योग्यता के मिलने पर कही गई तीन लब्धियों से युक्त जीव के प्रतिसमय विशुद्धता होती है और आयु के बिना शेष सात कर्मों की स्थिति अन्तः कोडाकोडी सागर प्रमाण शेष रह जाती है तथा पहले जो अनुभाग था, उसमें अनन्त का भाग देने पर बहुभाग प्रमाण अनुभाग को घटाकर शेष एक भाग प्रमाण अनुभाग को रखता है। इसके होने की योग्यता के लाभ को प्रायोग्यलब्धि कहते हैं।

करणलब्धि -

आचार्य नेमिचंद्र कहते हैं —

तत्तो अभव्वजोग्गं परिणामं बोलिऊण भव्वो हु।
करणं करेदि कमसो अधापवत्तं अपुव्वमणि यट्टिं॥

प्रायोग्यलब्धि के पश्चात् अध:करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण रूप परिणामों के लाभ को करणलब्धि कहते हैं। अभव्य के योग्य परिणामों को उल्लंघ कर भव्य जीव क्रमश: तीनों करणों को करता है। करण भावों को कहते हैं। सम्यग्दर्शन प्राप्त करने वाले भावों की प्राप्ति को करण लब्धि कहते हैं। जिस जीव के उक्त चार लब्धियाँ हो चुकी हों और अन्तर्मुहूर्त में सम्यक्त्व होने वाला हो, उसी के करण लब्धि होती है।

इन पाँचों ही लब्धियों के प्रकरण में यह बात स्पष्टत: सामने आती है कि किसी भी गति का जीव जब सम्यक्त्व धारण करने के योग्य बनता (पात्रता की अपेक्षा) है, तब नियम से पाँच लब्धियों को प्राप्त होता है। लब्धि का अर्थ प्राप्ति है अर्थात् सम्यक्त्व ग्रहण करनेयोग्य सामग्री की प्राप्ति और वह प्राप्ति सच्चे देव, गुरु एवं शास्त्र के पठन–पाठन स्वाध्याय से ही संभव है।

अत: सम्यग्दर्शन आत्मा के आश्रय से होता है। उसमें स्वाध्याय परम्परा से निमित्त कारण है। इस कारण स्वाध्याय सम्यक्त्व की भूमिका में निमित्त है।

इस प्रकार पंच लब्धि का वर्णन पूर्ण हुआ। *क्रमश:*

...... पृष्ठ 19 का शेष

बाहर देखने में रुक जाता है; और भीतर में चैतन्यभगवान आत्मा दिखायी नहीं देता इसलिये विश्वास नहीं आता इस वजह से महिमा नहीं आती और बाहर में विश्वास आता है, इसलिये बाहर में सब महिमावंत लगता है।

बाह्य में कोई सामान्य-सी बात हो तो भी कुतूहल करके देखने को जाता है; परंतु भीतर आत्मा का आश्चर्य करके, कुतूहल करके देखने को भी नहीं जाता! शास्त्र में आता है कि तू एक बार कुतूहल करके देख तो सही! कि भीतर कैसा आत्मा विराजमान है! *क्रमश:*

प्रत्येक समय का स्वतन्त्र उपादान

वस्तु का स्वभाव, उत्पाद-व्ययरूप होने से उसमें प्रति समय नवीन-नवीन कार्य होते ही रहते हैं। पहले समय की पर्याय में न हो - ऐसा कार्य दूसरे समय की पर्याय में प्रगट होता है। किसी के पहले समय मिथ्यात्वदशा हो और दूसरे समय सम्यक्त्वदशा प्रगट होती है। वहाँ जिसकी दृष्टि वस्तुस्वभाव पर नहीं है किन्तु संयोग पर है - ऐसा अज्ञानी जीव यह मानता है कि 'अमुक निमित्त आया; इसलिए यह कार्य हुआ। सद्गुरु आदि निमित्त मिले; इसलिए सम्यक्त्व हुआ। यदि अपने आप ही कार्य होता हो तो पहले क्यों नहीं हुआ?' वस्तुतः यह अज्ञानियों का महान् भ्रम है और यह भ्रम ही उपादान-निमित्त सम्बन्धी भूल का मूल कारण है। इस भ्रम के कारण ही; अर्थात्, स्वाभावदृष्टि से च्युत होकर संयोगदृष्टि के ही कारण ही जीव, अनादि काल से संसारसमुद्र में गोते खा रहा है। यहाँ वस्तु का यथार्थ स्वरूप, उसकी प्रत्येक पर्याय की सम्पूर्ण स्वाधीनता और परपदार्थों से बिलकुल उदासीनता बतलाकर, यह 'मूल में भूल' ग्रन्थ, अज्ञानियों के उस महान भ्रम का खण्डन करता है।

चेतन या जड़ समस्त वस्तुएँ, प्रत्येक समय अपने परिणमनस्वभाव से ही नवीन-नवीन परिणामरूप उत्पन्न होती हैं। पूर्व समय में अमुक दशा नहीं होती और पश्चात् होती है, वहाँ उस समय की पर्याय की वैसी ही योग्यता होने से होती है। दो जीवों में से एक को सम्यक्त्व है और दूसरे के मिथ्यात्वदशा है, उसका क्या कारण है? दोनों जीवों के द्रव्य और गुण तो समान हैं, दोनों के पूर्व पर्याय का तो वर्तमान में अभाव है और अनादि से परिणमन करते-करते दोनों वर्तमान काल तक आये हैं, तथापि एक के सम्यक्त्वरूप परिणमन और दूसरे के मिथ्यात्वरूप परिणमन का क्या कारण है? कारण यही कि दोनों द्रव्यों के परिणमन की उस समय की योग्यता ही वैसी है।

इस बात पर मुख्य ध्यान रखना कि 'कार्य होने की योग्यता त्रिकालरूप नहीं, किन्तु वर्तमानरूप है; इसलिए द्रव्य की जिस समय, जिस कार्यरूप परिणमित होने की योग्यता हो, उसी समय, वह द्रव्य, उस कार्यरूप परिणमित होता है किन्तु उससे आगे या पीछे वह कार्य नहीं होता।' एक जीव को पहले मिथ्यात्वदशा थी, उस समय उसकी वैसे ही परिणमन की योग्यता थी, उसी से

वह मिथ्यात्वदशा थी, न कि कुदेवादि के कारण से और पश्चात् उस जीव की सम्यक्त्वदशा हुई, उस समय वह जीव अपने उस समय के परिणमन की योग्यता से ही उसरूप परिणमित हुआ है, न कि सद्गुरु इत्यादि के कारण से।

इसी प्रकार प्रत्येक परमाणु भी अपनी स्वतन्त्र योग्यता से ही परिणमित हो रहा है। एक समय दो परमाणु लाल रङ्गरूप परिणमित हों और दूसरे समय उसमें से एक परमाणु काले रङ्गरूप तथा दूसरा सफेद रङ्गरूप परिणमित होता है। दोनों के द्रव्य-गुण तो समान हैं, पूर्व पर्याय भी दोनों की समान थी और अनादि से परिणमित होते-होते दोनों वर्तमान काल तक आये हैं, तथापि परिणाम में अन्तर पड़ता है क्योंकि उन-उन परमाणुओं के परिणमन की उस समय की योग्यता स्वतन्त्र है।

वस्तु की ऐसी ही स्वाधीनता है और ऐसे ज्ञान में ही स्वभाव का पुरुषार्थ है। जैसे, त्रिकाली द्रव्य सत् है, उसका कोई कर्ता नहीं है और न उसे किसी की अपेक्षा है; वैसे ही उसके अनादि-अनन्त समय में प्रत्येक समय की पर्याय अपनी स्वतन्त्र योग्यता रखती है, इसी का नाम उपादान है। द्रव्य-गुण की स्थिति सदा एक समान होती है परन्तु पर्यायें सदा एक समान नहीं होतीं।

त्रैकालिक द्रव्य को और उसकी पर्याय के प्रत्येक समय के स्वतन्त्र कार्य को जानना, वह उपादान का ज्ञान है और उस समय संयोगरूप अन्य द्रव्यों का ज्ञान करना, वह निमित्त का ज्ञान है। इन दोनों को स्वतन्त्र जानने पर ही दो पदार्थों में एकत्वबुद्धि दूर होकर सम्यग्ज्ञान होता है परन्तु 'इस निमित्त पदार्थ के कारण उपादान का कार्य हुआ अथवा निमित्त आया, इसलिए कार्य हुआ; निमित्त ने कुछ प्रभाव डाला, सहायता की, प्रेरणा दी' – इस प्रकार का कोई भी सम्बन्ध मानना, वह उपादान-निमित्त का यथार्थ ज्ञान नहीं, अपितु मिथ्याज्ञान है।

जो जीव, सूक्ष्म तत्त्वदृष्टि के अभाव के कारण स्वभाव से प्रत्येक पदार्थ की स्वाधीनता और एक के पश्चात् एक दशारूप होने की उसकी स्वतन्त्र योग्यता को नहीं जानते, वे एक पदार्थ का दूसरे पदार्थ के साथ सम्बन्ध होने की; अर्थात्, वस्तु की पराधीनता की मिथ्याकल्पना किये बिना नहीं रह सकते और ऐसी जो वस्तुस्वरूप से विपरीत कल्पना है, वही महान अधर्म है।●●

[आत्मधर्म, (हिन्दी), वर्ष-5, अङ्क-6, पृष्ठ 207-209]

ब्रह्मचारी रायमल्लजी

ब्रह्मचारी श्री रायमल्लजी पंडित टोडरमलजी के अनन्यतम प्रेरक व सहयोगी थे। जैसा कि स्वयं पंडित टोडरमलजी लिखते हैं कि —

रायमल साधर्मी एक, धर्म सधैया सहित विवेक।
सो नाना विधि प्रेरक भयो, तब यह उत्तम कारज थयो॥

पंडित टोडरमलजी, पंडित दौलतरामजी कासलीवाल, पंडित जयचंद छाबड़ा आदि विद्वानों ने पूर्णतः आदर सहित, अपनी-अपनी रचनाओं में उनको स्मरण किया है। वे जिनवाणी के प्रचार-प्रसार के लिए निरंतर दूसरों को प्रेरणा देते व उनकी प्रेरणा से ही, गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, पद्मपुराण हरिवंशपुराण, आदि महान ग्रंथों की हिन्दी टीकाएँ लिखी गयी थीं।

तत्त्वज्ञान से अछूते एक जैन परिवार में जन्में रायमल्लजी ने भीलवाड़ा से लगभग बारह कोस की दूरी पर स्थित सरावगियों के प्रमुख गढ़ शाहपुरा गाँव में, अपने अंधकारमय जीवन को समाप्त करते हुए धार्मिक जीवन प्रारंभ किया था। वे यहाँ सात वर्ष रहे, और यहीं पर उनका सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्य उदित हुआ था। यह तथा इन्द्रध्वज विधान-महोत्सव पत्रिका पृष्ठ दो में देखने को मिलता है। इनके जन्म काल के संबंध में, डॉ. देवेन्द्र कुमार जी शास्त्री ने ज्ञानानन्द श्रावकाचार की प्रस्तावना में संवत् 1780 निर्धारित किया है।

ब्रह्मचारी श्री रायमल्लजी के तीन रचनारूपी-रत्न प्राप्त होते हैं— इन्द्रध्वज विधान महोत्सव पत्रिका; ज्ञानानन्द श्रावकाचार; और चर्चासंग्रह।

'इन्द्रध्वज विधान महोत्सव पत्रिका' की रचना माघ शुक्ल 10, वि.सं. 1821 में सम्पन्न हुई थी। दूसरी कृति 'ज्ञानानंद निर्झरनिज रस श्रावकाचार' में जैन सद्गृहस्थों के आचार का विशद व सरल शैली में वर्णन किया गया है। इस ग्रंथ का एक संस्करण वि.सं. 1975 में सद्बोध रत्नाकर कार्यालय, बड़ा बाजार, सागर से प्रकाशित हुआ था। इस संस्करण के संशोधक श्री मूलचन्द जी मैनेजर हैं। तत्पश्चात् एक और अन्य संस्करण श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल, भोपाल से प्रकाशित हुआ है। इसके संपादक डॉ. श्री देवेन्द्र कुमार जी ने इस संस्करण की प्रस्तावना में पंडित जी का विशद एवं विस्तृत परिचय दिया है। पाठकों को

श्री रायमल्ल जी का विस्तार से परिचय श्री देवेन्द्र कुमार जी की प्रस्तावना से प्राप्त करना चाहिए।

श्री रायमल्लजी की तृतीय कृति 'चर्चासंग्रह' है, जो कि अद्यतन अप्रकाशित थी। इसकी एक हस्तलिखित प्रति श्री दिगम्बर जैन मंदिर अलीगंज के शास्त्र-भंडार में उपलब्ध है। इस प्रति के लिपिकार श्री उजागर दास जी ने इसे वि. सं. 1854 में लिपिबद्ध किया था। उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों में यह अधिक प्राचीन व शुद्ध है। यह ग्यारह हजार दो सौ श्लोक प्रमाण है। इसमें चारों अनुयोगों के उपयोगी प्रश्नोत्तर सुंदर ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। इस ग्रंथ की विषयवस्तु कहीं प्रश्नोत्तरों के रूप में व कहीं मात्र चर्चा के रूप प्रस्तुत है। इन प्रश्नोत्तरों को कहीं तो आगम के आधार पर प्रस्तुत किया गया है, व कहीं तर्क प्रमाण का अवलंबन लिया गया है। सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि इनमें आगम ग्रंथों के स्वाध्याय तत्त्वचर्चा से, किसी एक तथ्य को इतनी स्पष्टता व विषय के प्रतिपादन की संक्षिप्त परंतु सारगर्भित शैली में प्रस्तुत किया गया है कि उनमें अपूर्वार्थता के ही दर्शन होते हैं। विषयवस्तु की स्पष्टता के साथ भाषा का नैसर्गिक प्रवाह पल्लवित हुआ है।

अप्रैल 2025 माह के मुख्य जैन तिथि-पर्व

2 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 5
श्री अजितनाथ मोक्ष कल्याणक

3 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 6
श्री संभवनाथ मोक्ष कल्याणक

5 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 8 **अष्टमी**

8 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 11
श्री सुमतिनाथ जन्म ज्ञान मोक्ष कल्याणक

10 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 13
श्री महावीर स्वामी जन्म कल्याणक

11 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 14 **चतुर्दशी**

12 अप्रैल – चैत्र शुक्ल 15
श्री पद्मप्रभ ज्ञान कल्याणक

15 अप्रैल – वैशाख कृष्ण 2
श्री पार्श्वनाथ गर्भ कल्याणक

22 अप्रैल – वैशाख कृष्ण 9
श्री मुनिसुव्रतनाथ ज्ञान कल्याणक

23 अप्रैल – वैशाख कृष्ण 10
श्री मुनिसुव्रतनाथ जन्म तप कल्याणक

26 अप्रैल – वैशाख कृष्ण 13-14
चतुर्दशी
श्री नमिनाथ मोक्ष कल्याणक

28 अप्रैल – वैशाख शुक्ल 1
श्री कुंथुनाथ जन्म तप मोक्ष कल्याणक

29 अप्रैल – वैशाख शुक्ल 2
कानजी स्वामी जन्म जयन्ती

30 अप्रैल – वैशाख शुक्ल 3
अक्षय तृतीया

समाचार-दर्शन

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का
23वाँ साक्षात्कार शिविर सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का नवीन प्रवेशार्थियों के प्रवेश हेतु 23वाँ साक्षात्कार शिविर दिनांक 26 मार्च 2025 से 29 मार्च 2025 तक सम्पन्न हुआ। जिसमें पंडित पुनीतजी मंगलवर्धिनी हैदराबाद, कानपुर से पधारे श्री जैनबहादुर जैन; विदिशा से श्री राजीव जैन, पंडित अतुल शास्त्री, पंडित आशीष शास्त्री, आदि महानुभावों की उपस्थिति में शिविर का उद्घाटन सम्पन्न किया गया।

हैदराबाद से पधारे पंडित पुनीतजी मंगलवर्धिनी ने समकित प्रवेश पुस्तक के आधार से शुद्ध-अशुद्धपर्याय, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग की सिद्धि, हेय-ज्ञेय उपादेय तत्त्वों के आधार से कक्षाओं का लाभ प्रदान किया और डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मंगलार्थी अर्चित, संयम आदि मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा कक्षाओं का संचालन किया गया, पंडित अभिषेक शास्त्री द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों का संचालन आदि किया गया।

कार्यक्रम के प्रथम दिन शिविर की आवश्यकता और उपयोगिता पर मंगलार्थी समकित शास्त्री ने विद्यानिकेतन की विशेषताएँ-साक्षात्कार शिविर की प्रक्रिया सम्बन्धी उद्बोधन दिया गया। इस प्रकार औपचारिक उद्घाटन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित सुधीर शास्त्री का मार्गदर्शन और सक्रिय भूमिका भी अनुकरणीय रही।

वर्तमान मङ्गलार्थी छात्रों की धार्मिक परीक्षा एवं अन्य संचालित गतिविधियों के पुरस्कार वितरण 28 मार्च को उपस्थित अभिभावकों के द्वारा प्रदान किए गए।

सभी छात्रों का चयन निष्पक्ष चयन प्रक्रिया द्वारा किया गया। इसमें श्री अनिल जैन, श्रीमती प्रिया जैन, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, पण्डित समकित शास्त्री का विशेष सहयोग प्राप्त हुआ। अन्तिम दिन 29 मार्च को श्री स्वप्निल जैन द्वारा चयनित विद्यार्थियों की घोषणा और मङ्गलार्थी छात्रों एवं अभिभावकों को महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान की गयीं।

तीर्थधाम चिदायतन में विधान सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : फाल्गुन माह के अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर श्री भगवान शान्तिनाथ चिदेश जिनालय में देवाधिदेव के गुणानुवाद, पूजन-विधान व आत्म आराधना हेतु स्वाध्याय का पुनीत कार्यक्रम 8 मार्च से 14 मार्च तक सानंद

संपन्न हुआ। इस अवसर पर श्री शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ विधान का आयोजन अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन खतौली के तत्त्वावधान में हुआ। ध्वजारोहणकर्ता श्री नीरज जैन, सिरसागंज थे।

सम्पूर्ण कार्यक्रम में डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, तीर्थधाम मङ्गलायतन; पंडित कल्पेन्द्र जैन, खतौली; श्री अतुल जैन, मेरठ आदि का सक्रिय सहयोग रहा। इस अवसर पर खतौली, मेरठ, खेकड़ा, दिल्ली, सहारनपुर आदि स्थानों से सैकड़ों भाई-बहिनों ने पधारकर लाभ लिया। हमारे लिए यह हर्ष की बात है कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव के पश्चात् तीर्थधाम चिदायतन में नित्य पूजन के अलावा अवसर विशेषों पर विधान, पूजन, स्वाध्याय आदि आयोजित किये जाते हैं।

शैक्षिक भ्रमण

अलीगढ़ : राज्यपाल सचिवालय उत्तर प्रदेश लखनऊ द्वारा संचालित राजा महेन्द्र प्रताप सिंह विश्वविद्यालय अलीगढ़ के छात्रों ने साईकलिंग यात्रा सम्पन्न की। जिसमें अलीगढ़ के आसपास के गाँवों को गोद लिया है। ऐतिहासिक एवं धार्मिक स्थल तीर्थधाम मंगलायतन का शैक्षिक भ्रमण 24 मार्च 2025 को सम्पन्न किया।

इस शैक्षिक भ्रमण के अवसर पर तीर्थधाम मङ्गलायतन के पंडित सुधीर शास्त्री ने तीर्थधाम का परिचय प्रदान किया। डॉ. सचिन्द्र शास्त्री ने सभी का स्वागत और जैनधर्म के मूलभूत सिद्धांत अहिंसा परिचय उनके समक्ष अपने व्याख्यान में दिया तथा श्री संदीप लोखण्डे ने तीर्थधाम मङ्गलायतन का भ्रमण कराया। विश्वविद्यालय की ओर से पधारे हुए प्रोफेसर, शिक्षकों द्वारा अपने उद्‌बोधन में प्रभावित होकर कहा कि तीर्थधाम मङ्गलायतन का धार्मिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है और यहाँ धार्मिक, शान्तिमय वातावरण देखकर हम सभी मन्त्रमुग्ध हुए और उन्होंने बार-बार मङ्गलायतन पधारने की भावना व्यक्त की।

अमायन बालिका निकेतन की बालिकाओं का आगमन

अमायन : बाल ब्रह्मचारी रविन्द्रजी आत्मन् की मंगल प्रेरणा में स्थापित श्री वर्द्धमान न्यास अमायन से बालिका निकेतन की बालिकाओं का समूह जिसमें न्यास प्रमुख श्री सोनूजी, बालब्रह्मचारिणी बहिनें और खड़ेरी पंच कल्याणक में भगवान के माता-पिता का पद लेनेवाले श्री नरोत्तमदासजी खड़ेरी इत्यादि होली के अवसर तीर्थधाम मङ्गलायतन पधारे और उन्होंने विराजमान जिनबिम्बों के पूजन, भक्ति, स्वाध्याय आदि समस्त गतिविधियों का लाभ लिया। तीर्थधाम मङ्गलायतन से श्री अनिल जैन, पंडित सुधीर शास्त्री, पंडित अभिषेक शास्त्री ने उनका अंगवस्त्र पहनाकर एवं शास्त्र भेंटकर, उनका स्वागत किया।

जैन मिलन का केन्द्रीय परिषद-वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : भारतीय जैन मिलन का 59वाँ, **केन्द्रीय परिषद-वार्षिक अधिवेशन** तीर्थधाम मङ्गलायतन में दिनांक 22 से 24 मार्च 2025 सानन्द सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर जैन मिलन संस्था के **राष्ट्रीय अध्यक्ष वीर विजय जैन गुना,** विशिष्ट संरक्षक वीर सुरेश जैन ऋतुराज मेरठ, महामंत्री वीर अजय जैन सहारनपुर आदि मंचासीन थे। इसके अलावा सम्पूर्ण भारतवर्ष से लगभग 400 जैन मिलन के सम्मानित सदस्यगण इस कार्यक्रम में सम्मिलित हुए। तीर्थधाम मङ्गलायतन से श्री स्वप्निल जैन, श्री अनिल जैन, पंडित सुधीर शास्त्री आदि ने तीर्थधाम मङ्गलायतन का परिचय दिया और सभी महानुभावों का परम्परा अनुसार अंगवस्त्र पहनाकर स्वागत किया। जैन मिलन के प्रमुख वक्ताओं ने सामाजिक एकता, धार्मिक शान्ति पर बल दिया और तीर्थधाम मङ्गलायतन की रीति-नीति, संचालित गतिविधियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

तीर्थधाम मङ्गलायतन का सुयश

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन के सप्तम बैच के **मंगलार्थी अक्षय जैन ग्वालियर** का चयन **दिल्ली ज्यूडिशियल सर्विसेज में सिविल जज** के रूप में सातवीं रैंक पर हुआ है।

तीर्थधाम मङ्गलायतन परिवार उनके एवं उनके परिवारीजनों के प्रति हार्दिक बधाई प्रेषित करता है एवं उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

दशलक्षण पर्व हेतु स्वीकृति

तीर्थधाम मङ्गलायतन : आगामी दशलक्षण पर्व (28 अगस्त से 06 सितम्बर 2025) पर जो मङ्गलार्थी छात्र, विद्वान स्वाध्यायार्थ, विधान हेतु समाज में जाना चाहते हैं, वे कृपया अपनी पूर्व सूचना तीर्थधाम मङ्गलायतन में पण्डित सुधीरजी 9756633800 को अवश्य प्रेषित करें।

मङ्गल प्रभावना

तीर्थधाम मङ्गलायतन में विद्वानों के आगमन की शृंखला में दिनांक 24 मार्च 2025 को पंडित जयकुमार जी कोटा के व्याख्यान का लाभ, भगवान आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्रों और उपस्थित परिवारीजनों को प्राप्त हुआ। उन्होंने तीर्थधाम मङ्गलायतन में विराजमान जिनप्रतिमाओं के दर्शनों का लाभ लिया।

पंडित सुधीर शास्त्री ने उनका आभार व्यक्त करते हुए पुनः पुनः मङ्गलायतन पधारने का अनुरोध किया।

卐 तीर्थधाम मङ्गलायतन 卐

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685   Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2024-26

प्रतिकूलता में भी सन्तों को दुःख नहीं

बाह्य प्रतिकूल संयोग होने पर भी सन्तों को दुःख नहीं होता, क्योंकि चैतन्यमूर्ति आत्मा अस्पर्श स्वभावी है, वह परसंयोगों को स्पर्श नहीं करता; अतः उसे संयोगों का दुःख नहीं है।

धर्मात्मा को अन्तर स्वभाव की दृष्टि से आत्मा के परम आनन्द का स्पर्श हुआ है, आनन्द का अनुभव हुआ है और फिर विशेष लीनता होने पर वीतरागी चारित्रदशा प्रगटी है, उसमें परम आनन्द की लहरें बढ़ गईं हैं।

भगवान वन में अकेले रहते थे, इसलिए दुःखी थे – ऐसा नहीं है। वे तो अन्तर के चैतन्यवन में आत्मा के आनन्द की मस्ती में रहते थे। वास्तव में भगवान वन में रहे ही नहीं, वे तो शरीर में भी नहीं रहते थे, पञ्च-महाव्रत के शुभराग में भी नहीं रहते थे; वे तो अपने आत्मस्वभाव में रहकर आत्मा के आनन्द में झूलते थे।

सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके भगवान ने दीक्षा ली। इसके पश्चात् आत्मध्यान में लीन होते ही उन्हें मनःपर्ययज्ञान प्रगट हो जाता है।

(- राजकोट : वीर सं. 2476, फाल्गुन शुक्ल दशमी, दीक्षाकल्याणक दिवस)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक :** डॉ. जयन्तीलाल जैन, मङ्गलायतन वि.वि.

If undelivered please return to -

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com   www.mangalayatan.com